बनाव और बिगाड़

मौलाना सय्यद अबुल-आला मौदूदी (रह०)

अल्लाह कृपाशील और दयावान के नाम से

बनाव और बिगाड़

सारी प्रशंसा उस ईश्वर के लिए है जिसने हमें जन्म दिया, बुद्धि एवं विवेक प्रदान किया, बुरे भले का ज्ञान दिया, और हमारे पथ-प्रदर्शन हेतु अपने श्रेष्ठ दूत भेजे और उसकी कृपा तथा अनुकम्पा हो उसके उन पुण्यात्मा व्यक्तियों पर जिन्होंने मानव-जाति को मानुषिकता की शिक्षा दी और शिष्ट मनुष्यों के समान रहना सिखाया, मानव-जीवन के वास्तविक उद्देश्य से उसे परिचित किया और वे सिद्धांत बताये जिन पर चलकर वह संसार में सुख-शान्ति और परलोक में मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

यह सृष्टि जिस ईश्वर ने रची है और जिसने इस भूतल का आमण्डल बिछाकर इस पर मानव-जाति को बसाया है, वह कोई अन्धा-धुन्ध अललटप काम करने वाला ईश्वर नहीं है, वह चौपट राजा नहीं है कि उसकी नगरी अन्धेर नगरी हो । वह अपने दृढ़ सिद्धान्त, स्थायी विधान तथा अटल नियम रखता है जिनके अनुसार वह इस सारे ब्रह्माण्ड पर शासन कर रहा है। उसके अटल नियम जिस प्रकार सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी तथा नक्षत्रों पर लागू हैं, जिस प्रकार वायु, जल, वृक्ष एवं पशु पर लागू हैं उसी प्रकार हम आप सब पर लागू हैं। उसका बेलाग और अटल क़ानून जिस प्रकार हमारे जन्म और मरण पर, हमारे बचपन, जवानी और बुढ़ापे पर, हमारे सांस के आवागमन पर, हमारी पाचन-क्रिया तथा रक्त-संचालन पर, हमारे स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य पर चल रहा है, ठीक उसी प्रकार उसका एक और क़ानून भी है जो हमारे इतिहास के उतार चढ़ाव पर, हमारे

गिरने और उठने पर, हमारे उत्थान एवं पतन पर और हमारी वैयक्तिक, जातीय तथा राष्ट्रीय उन्नति एवं अवनति पर शासन कर रहा है, और यह क़ानून भी उतना ही बेलाग और अटल है। यदि यह सम्भव नहीं है कि मनुष्य नाक से सांस लेने के बजाय आंखों से सांस ले और आमाशय में खाना पचाने के बजाये दिल में हज़्म करने लगे तो यह भी सम्भव नहीं है कि ईश्वर के क़ानून के अनुसार जिस मार्ग पर चल कर किसी जाति को नीचे जाना चाहिए वह उसे ऊंचाई पर ले जाए। यदि आग एक के लिए गर्म और दूसरे के लिए ठंडी नहीं है, तो बुरे करतूत भी जो ईश्वर के नियमानुसार बुरे हैं एक को गिराने वाले और दूसरों को उठाने वाले नहीं हो सकते। जो भी नियम ईश्वर ने मनुष्य के बुरे और भले भाग्य बनाने के लिए नियत किये हैं वह न किसी के बदले बदल सकते हैं और न किसी के टाले टल सकते हैं और न उनमें किसी के साथ बैर और किसी दूसरे के प्रति पक्षपात ही पाया जाता है।

ईश्वर के इस विधान की सर्व-प्रथम तथा सब से महत्वपूर्ण धारा यह है :

'वह बनाव को पसन्द करता है और बिगाड़ को पसन्द नहीं करता है।'

स्वामी होने के नाते उसकी इच्छा यह है कि उसकी सृष्टि का प्रबन्ध ठीक-ठीक किया जाय, उसको अधिकाधिक संवारा जाये, उसके दिये हुए साधनों और प्रदान की हुई शक्तियों तथा प्रवृत्तियों को अधिकाधिक विधिपूर्वक प्रयोग किया जाय। वह इस बात को कदापि पसन्द नहीं करता — और उस से यह आशा की भी नहीं जा सकती कि वह कभी उसे पसन्द करेगा – कि उसकी सृष्टि बिगाड़ी जाय, उजाड़ी जाय और उसको दुर्व्यवस्था, अनर्थ तथा अत्याचार से नष्ट भ्रष्ट कर डाला जाय। मनुष्य में से जो लोग भी संसार के प्रबन्ध के उम्मीदवार

बन कर खड़े होते हैं उनमें से केवल वही लोग ईश्वर की दृष्टि में निर्वाचन का पात्र ठहरते हैं जिनमें बनाने की प्रवृत्ति अधिकाधिक होती है और उन्हीं को वह यहां के प्रबन्ध का अधिकार समर्पित करता है।

फिर वह देखता रहता है कि यह लोग बनाते कितना हैं और बिगाड़ते कितना, जब तक उनका बनाव उनके बिगाड़ से अधिक होता है और कोई दूसरा उम्मीदवार उन से अधिक बनाने वाला और उनसे कम बिगाड़ने वाला मैदान में मौजूद नहीं होता उस समय तक उनकी सारी बुराइयां और उनके सारे अपराधों के होते हुए भी संसार का प्रबन्ध उन्हीं के हाथ में रहता है। किन्तु जब वह कम बनाने और अधिक बिगाड़ने लगते हैं तो ईश्वर उन्हें हटाकर फेंक देता है और दूसरे उम्मीदवारों को इसी अनिवार्य शर्त पर प्रबन्ध सौंप देता है।

यह नियम सर्वथा एक प्राकृतिक नियम है और आप की अक़्ल गवाही देगी कि इसको ऐसा ही होना चाहिए। यदि आप में से किसी व्यक्ति की एक वाटिका हो और उसे एक माली को समर्पित कर दें तो आप स्वयं बतायें कि वह उस माली से पहली बात क्या चाहेगा। वाटिका का मालिक अपने माली से इसके सिवा आख़िर और क्या चाह सकता है कि वह उसके बाग़ को बनाये न कि बिगाड़ कर रख दे। वह तो अनिवार्यत: यही चाहेगा कि उसके बाग़ को अधिकाधिक अच्छी हालत में रखा जाये, उसे अधिकाधिक उन्नति दी जाय, उसकी सुन्दरता में, उसकी स्वच्छता में, उसकी पैदावार में अधिकाधिक वृद्धि हो। जिस माली को वह देखेगा कि वह बड़ी मेहनत से, जी लगाकर, योग्यता से, विधिपूर्वक उसकी वाटिका की सेवा कर रहा है, उसकी क्यारियों को संवार रहा है, उसके अच्छे वृक्षों का संरक्षण कर रहा है, उसको खर-पतवार और झाड़-झंकाड़ से साफ़ कर रहा है और उसमें अपनी सूझ-बूझ से अच्छे फलों और फूलों की नित नई क़िस्में लगा रहा है, तो नि:सन्देह वह उस से प्रसन्न होगा, उसे उन्नति का अवसर देगा, और ऐसे सुयोग्य, कर्तव्य परायण तथा आज्ञाकारी

माली को निकालना कभी पसन्द न करेगा। किन्तु उसके विपरीत यदि वह देखे कि माली निकम्मा भी है, कामचोर भी है और जान-बूझ कर या बे-जाने-बूझे उस वाटिका के साथ दुर्व्यवहार कर रहा है, सारी वाटिका गन्दगियों से अटी पड़ी है, और क्यारियां टूट-फूट रही हैं, पानी कहीं बेकार बह रहा है और कहीं बड़े बड़े भू-भाग सूखते चले जा रहे हैं, घास फूस और झाड़-झंकाड़ बढ़ते चले जाते हैं, फूलों और फल वाले वृक्षों को निर्दयता के साथ काट-काट कर और तोड़-तोड़ कर फेंका जा रहा है, अच्छे पौधे मुरझा रहे हैं और कांटेदार झाड़ियाँ बढ़ रही हैं, तो आप ख़ुद ही सोचिये कि बाग़ का मालिक ऐसे माली को कैसे पसन्द कर सकता है ? कौन सी सिफ़ारिश, कौन सा निवेदन, कौन सी प्रार्थना, कौन से पैतृक स्वत्व या अन्य मनगढ़न्त अधिकारियों का विचार उसकी अपनी वाटिका ऐसे माली के हवाले करने पर मजबूर कर सकता है। अधिकाधिक रियायत वह बस इतनी ही तो करेगा कि उसे चेतावनी देकर फिर एक अवसर दे दे, किन्तु जो माली चेतावनी देने पर भी सचेत न हो और वाटिका को उजाड़े ही चला जाये, उसका इलाज इस के सिवाय और क्या है कि बाग़ का मालिक कान पकड़ कर उसे निकाल बाहर करे और दूसरा माली उसकी जगह रख ले।

अब सोचियें कि अपने एक ज़रा से बाग़ के प्रबन्ध में जब आप इतना कुछ करते हैं तो ईश्वर, जिसने अपनी इतनी बड़ी पृथ्वी, इतने अधिक सामानों के साथ मानव जाति को सौंपी है और इतने विस्तृत अधिकार उनको अपनी सृष्टि और उसकी वस्तुओं पर दिये हैं, आख़िर इस बात की उपेक्षा कैसे कर सकता है कि आप उस की दुनिया बना रहे हैं या उजाड़ रहे हैं। आप बना रहे हैं तो कोई वजह नहीं कि वह आप को अकारण हटा दे, परन्तु यदि आप बनायें कुछ नहीं और उसकी इस विशाल वाटिका को बिगाड़ते और उजाड़ते ही चले जायें तो आप का दावा चाहे आप की दृष्टि में कैसे ही ठोस मनमाने आधारों पर निर्धारित हो वह अपनी वाटिका पर आप के किसी अधिकार को स्वीकार नहीं करेगा और

कुछ चेतावनियां और संभलने के दो चार अवसर देकर आख़िर आप को अधिकारच्युत करके प्रबन्ध से बेदख़ल ही करके छोड़ेगा।

इस विषय में ईश्वर का दृष्टिकोण मनुष्य के दृष्टिकोण से उसी प्रकार भिन्न है जिस प्रकार मनुष्य में एक बाग़ के मालिक का दृष्टिकोण उसके माली के दृष्टिकोण से भिन्न हुआ करता है। मान लीजिए कि मालियों का एक कुटुम्ब दो-चार पीढ़ियों से एक आदमी के बाग़ में काम करता चला आ रहा है। उसका कोई दादा परदादा अपनी योग्यता के कारण यहां रखा गया था फिर उस की सन्तान ने भी काम अच्छा किया, तो मालिक ने सोचा कि अकारण उन्हें हटाने और नये आदमी रखने की क्या ज़रूरत है, जब काम यह भी अच्छा ही कर रहे हैं तो उनका हक़ दूसरों से अधिक है। इस प्रकार यह कुटुम्ब बाग़ में जम गया। किन्तु अब इस कुटुम्ब के लोग बिल्कुल निकम्मे, कामचोर और कर्तव्यविमूढ़ हो गये हैं। बाग़बानी की कोई योग्यता उनमें नहीं है, सारे बाग़ का सत्यनाश किये डालते हैं, और उस पर उनका दावा यह है कि हम बाप दादा के समय से इस बाग़ में रहते चले आये हैं, हमारे परदादा ही के हाथों यह बाग़ सर्वप्रथम आबाद हुआ था। अत: हमारा इस पर जन्म सिद्ध अधिकार है, और अब किसी प्रकार यह उचित नहीं है कि हमें बेदख़ल करके किसी दूसरे को यहां का माली बना दिया जाये। ये उन निकम्मे मालियों का दृष्टिकोण है, किन्तु क्या बाग़ के मालिक का दृष्टिकोण भी यही हो सकता है ? क्या, वह यह न कहेगा कि मेरे निकट तो सब से महत्वपूर्ण बात मेरे बाग़ का अच्छा प्रबन्ध है ? मैं ने यह बाग़ तुम्हारे परदादा के लिए नहीं लगाया था, बल्कि तुम्हारे परदादा को इस बाग़ के लिए नौकर रखा था। तुम्हारे इस पर जो अधिकार भी हैं, सेवा तथा योग्यता के साथ सम्बद्ध हैं। बाग़ को बनाओगे तो तुम्हारे सब अधिकारों को स्वीकार किया जायेगा। अपने पुराने मालियों से आख़िर मुझे क्या बैर हो सकता है कि वह अच्छा काम करे तब भी मैं उन्हें अकारण निकाल ही दूं और नये उम्मीदवारों का व्यर्थ ही परीक्षण

करूं। परन्तु यदि इस बाग़ ही को तुम बिगाड़ते और उजाड़ते रहे, जिसकी देख-रेख के लिए तुम्हें रखा गया था तो फिर मैं तुम्हारा कोई अधिकार नहीं मानता। दूसरे उम्मीदवार मौजूद हैं, बाग़ का प्रबन्ध उनके हवाले करूंगा और तुम को उनके अधीन सेवक बन कर रहना होगा। इस पर भी यदि तुम न संभले और यह सिद्ध हो गया कि प्राधीनता में भी तुम किसी काम के नहीं हो, बल्कि कुछ बिगाड़ने वाले ही हो तो तुम्हें यहां से निकाल बाहर किया जायेगा और तुम्हारी जगह सेवक भी दूसरे ही लाकर बसाये जायेंगे।

यह अन्तर जो मालिक और मालियों के दृष्टिकोण में है, ठीक यही अन्तर संसार के मालिक और संसार वालों के दृष्टिकोण में भी है। संसार की अनेक जातियां पृथ्वी के जिस-जिस भाग में बसती हैं उन का दावा यही है कि यह भू-भाग हमारा राष्ट्र है। पीढ़ियों से हम और हमारे बाप दादा यहां रहते चले आ रहे हैं। इस राष्ट्र पर हमारे जन्मसिद्ध अधिकार हैं, अत: यहां शासन प्रबन्ध हमारा अपना ही होना चाहिए। किसी दूसरे को यह अधिकार प्राप्त नहीं कि बाहर से आकर इस का प्रबन्ध संभाले। किन्तु सृष्टि के असली मालिक, ईश्वर का दृष्टिकोण यह नहीं है। उसने कभी इन जातीय तथा राष्ट्रीय अधिकारों को स्वीकार नहीं किया है। वह नहीं मानता कि प्रत्येक राष्ट्र पर उसके निवासियों ही का जन्मसिद्ध अधिकार है जिससे उस को किसी हाल में बेदख़ल नहीं किया जा सकता। वह तो यह देखता है कि कोई जाति अपने राष्ट्र में काम क्या कर रही है। यदि वह बनाव और संवार के काम करती हो, यदि वह अपनी शक्तियां पृथ्वी के सुधार तथा उन्नति के लिए प्रयोग करती हो, यदि वह बुराइयों की पैदावार रोकने और भलाइयों की खेती सींचने में लगी हुई हो, तो सर्वस्वामी कहता है कि नि:संदेह तुम इस योग्य हो कि यहां का प्रबन्ध तुम्हारे हाथ में रहने दिया जाय। तुम पहले से यहां आबाद भी हो और योग्य भी हो, अतएव तुम्हारा ही अधिकार दूसरे की अपेक्षा अधिक है। परन्तु यदि मामला इस का उलटा हो,

बनाव कुछ न हो और सब बिगाड़ ही के काम हुए जा रहे हों, भलाइयां कुछ न हों और बुराइयों ही से विधाता की सृष्टि भरी जा रही हो, जो कुछ ईश्वर ने उत्पन्न किया है उसे निर्दयतापूर्वक नष्ट किया जा रहा हो और कोई अच्छा काम उससे लिया ही न जाता हो, तो फिर ईश्वर की ओर से पहले कुछ हलकी और कुछ सख़्त चोटें लगाई जाती हैं, ताकि यह लोग सचेत हों और अपना रंग-ढ़ंग बदलें, फिर जब वह जाति इस पर भी नहीं सुधरती तो उसे राष्ट्र के प्रबन्ध से बेदख़ल कर दिया जाता है और किसी अन्य जाति को जो उसकी अपेक्षा अधिक योग्य हो वहां का शासनाधिकार सौंप दिया जाता है और बात इस पर भी समाप्त नहीं हो जाती, यदि पराधीन होने पर भी उस राष्ट्र के निवासी किसी योग्यता का प्रमाण नहीं देते और अपने दुर्व्यवहारों से यही प्रकट करते हैं कि उनसे कुछ भी बन न पायेगा, बल्कि कुछ बिगड़ेगा ही तो ईश्वर फिर ऐसी जाति को नष्ट कर देता है और उन के स्थान पर दूसरों को ले आता है जो उसकी जगह लेते हैं। इस विषय में ईश्वर का दृष्टिकोण सदैव वही होता है जो मालिक का होना चाहिए। वह अपनी सृष्टि के प्रबन्ध में दावेदारों और उम्मीदवारों के पैतृक अथवा जन्म-सिद्ध अधिकारों को नहीं देखता बल्कि यह देखता है कि इन में से कौन बनाव की अधिकाधिक योग्यता और बिगाड़ की कम से कम प्रवृत्ति रखता है। एक युग के उम्मीदवारों में से जो इस दृष्टि से योग्यतम दिखाई देते हैं, निर्वाचन उन्हीं का होता है और जब तक उन के बिगाड़ से बनाव अधिक रहता है या जब तक उनकी अपेक्षा अधिक अच्छा बनाने वाला और कम बिगाड़ने वाला कोई मैदान में नहीं आ जाता उस समय तक अधिकार उन्हीं के हाथ में रहता है।

यह जो कुछ कहा जा रहा है, इतिहास साक्षी है कि ईश्वर ने सदैव अपनी सृष्टि का प्रबन्ध इसी सिद्धान्त पर किया है। दूर क्यों जाइये, स्वयं अपने इस देश का इतिहास देख लीजिए। यहां जो जातियां पहले आबाद थीं उनकी रचनात्मक प्रवृत्तियां जब समाप्त हो गईं तो ईश्वर ने आर्यों को यहां के प्रबन्ध का अवसर

दिया जो अपने युग की जातियों में सब से अधिक श्रेष्ठ प्रवृत्तियां रखते थे। उन्हों ने यहां आकर एक बड़ी ही भव्य संस्कृति की नींव रखी, अन्यान्य ज्ञान-विज्ञान निकाले, कला कौशल को उन्नति दी, पृथ्वी का कोष निकाला और उन्हें रचनात्मक कार्यों में व्यय किया, बिगाड़ से अधिक बनाव के काम कर दिखाये। ये योग्यता जब तक उन में रही, इतिहास के सारे उथल-पुथल पर भी वही इस देश के प्रबन्धक रहे। दूसरे उम्मीदवार बढ़ कर आगे आये मगर पीछे ढकेल दिये गये, क्योंकि इन के होते हुए दूसरे प्रबन्धकों की आवश्यकता न थी। उनके आक्रमण अधिकाधिक बस यह हैसियत रखते थे कि जब कभी ये ज़रा बिगड़ने लगे तो किसी क़ो भेज दिया गया, ताकि इन्हें सचेत कर दें। किन्तु जब ये बिगड़ते ही चले गये और उन्होंने बनाव के काम कम और बिगाड़ के काम अधिक करने शुरू कर दिये, जब उनकी नैतिकता में वह पतन आया जिसके चिन्ह वाममार्गी अथवा वामाचारी मत में आप अब भी देख सकते है, जब उन्होंने 'वसुधेव कुटुम्बकम्' को भुलाकर मानवता के टुकड़े-टुकड़े कर दिये और स्वयं अपने समाज को वर्णों और जातियों में फाड़ डाला और अपने सामाजिक जीवन को एक श्रेणी के रूप में क्रम दे दिया जिसकी हर सीढ़ी का बैठने वाला अपने से ऊपर की सीढ़ी वाले का दास और नीचे की सीढ़ी वाले का प्रभु बन गया, जब उन्होंने लाखों करोड़ों जीवों पर वे अत्याचार किये जो अछूतपन के रूप में आज तक मौजूद हैं, जब उन्होंने ज्ञान-विज्ञान के द्वार जनसाधारण पर बन्द कर दिये और उनके पण्डित ज्ञान-विज्ञान के कोषों पर सांप बन कर बैठ गये और जब उनके कर्मचारी वर्ग के पास अपने बल पूर्वक जमाये हुए अधिकारों के उपभोग और दूसरों की कमाइ से भोग विलास के सिवा कोई काम न रहा तो ईश्वर ने अन्ततः उनसे देश का प्रबन्ध छीन लिया और मध्य ऐशिया की उन जातियों को यहां काम करने का अवसर दिया जो उस समय ईस्लाम के आन्दोलन से प्रभावित होकर जीवन की श्रेष्ठतर प्रवृत्तियों से सुसज्जित

हो गई थीं।

ये लोग शताब्दियों तक यहां के प्रबन्धक रहे और उनमें स्वयं इस देश के भी बहुत से लोग इस्लाम स्वीकार करके सम्मिलित हो गये। इस में संदेह नहीं कि इन लोगों ने बहुत कुछ बिगाड़ा भी, किन्तु जितना बिगाड़ा उससे अधिक बनाया। कई सौ वर्ष तक भारत में बनाव का जो काम भी हुआ उन्हीं के हाथों हुआ या फिर उनके प्रभाव से हुआ। उन्होंने विद्या के दीपक जलाये, आचार-विचार में सुधार किया, सभ्यता एवं संस्कृति को बहुत कुछ ठीक किया, समाज को संवारा, देश के विभिन्न साधनों को उस युग के अनुसार अच्छे कामों पर लगाया और शांति तथा न्याय का अच्छा प्रबन्ध किया, जो यद्यपि इस्लाम की कसौटी पर परखा जाये तो बहुत घटिया था, फिर भी यदि पहले की दुर्दशा और आसपास के देशों की हालत से उसकी तुलना की जाये तो उनसे कहीं बढ़-चढ़ कर था। उसके बाद वह भी अपने पूर्ववत्तियों की तरह बिगड़ने लगे उनमें भी बनाव की प्रवृत्तियां घटने लगीं और बिगाड़ की ओर उनकी रुचि बढ़ती चली गयी, उन्होंने भी ऊंच-नीच, वंशवर्ण के आधार पर भेद-भाव करके स्वयं अपने समाज को विभिन्न वर्गों में फाड़ लिया, जिससे असंख्य नैतिक, सांस्कृतिक तथा राजनैति क हानियां पहुंचीं। उन्होंने भी न्याय कम और अत्याचार अधिक करना शुरू कर दिया, वे भी शासनाधिकार के दायित्व भार को भूल कर केवल उसके लाभों और अधिकतर अनुचित लाभों पर दृष्टि रखने लगे। उन्होंने भी निर्माण, उन्नति और सुधार के काम छोड़ कर ईश्वर की दी गयी शक्तियों, प्रवृत्तियों तथा साधनों को नष्ट करना आरम्भ किया और यदि प्रयोग किया भी तो जीवन को बिगाड़ने वाले कार्यों में किया। भोग विलास में वह इतने खो गये कि जब अन्तिम पराजय पर उनके शासकों को दिल्ली के लाल क़िले से निकलना पड़ा तो उनके राजकुमार, वही जो शासन अधिकार के उम्मीदवार थे — जान बचाने के लिए भाग भी न सकते थे, क्योंकि ज़मीन पर चलना उन्होंने छोड़ रखा था।

मुसलमानों के जनसाधारण से लेकर बड़े-बड़े कर्मचारियों तक हर एक में स्वार्थपरता अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त हो चुकी थी और कोई नैतिक प्रतिबन्ध ऐसा न था जो उन्हें धर्म-द्रोह, देश-द्रोह तथा जाति-द्रोह से रोक सकता। नैतिक पतन चरम सीमा को पहुंच चुका था। उन में संहस्रों पेशेवर सिपाही पैदा होने लगे थे जिन की नैतिक दशा पालतू कुत्तों की सी थी कि जो चाहे रोटी देकर उन्हें पाल ले और फिर जिसका दिल चाहे उन से शिकार करा ले। इनमें यह अनुभूति भी शेष न रही थी कि यह नीच काम जिसके कारण उनके शत्रु स्वयं उन्हीं के हाथों उनका देश जीत रहे थे, अपने भीतर कुछ नीचता भी रखता है। 'ग़ालिब' जैसा कवि गौरव से कहता है।

"सौ पुश्त से है पेशये आबा सिपहगरी"

(सौ पीढ़ियों से हमारे बाप-दादा का पेशा सिपाहीगीरी है)

यह बात कहते हुए हमारे इतने बड़े कवि को ज़रा ख़्याल तक न गुज़रा कि "पेशावराना सिपाहीगीरी" कोई गौरव की नहीं, डूब मरने की बात है।

जब उनकी यह दशा हो गई तो ईश्वर ने उन्हें भी पदच्युत करने का निर्णय कर लिया और भारत के प्रबन्ध का स्थान फिर नये उम्मीदवारों के लिए रिक्त हो गया। इस अवसर पर चार उम्मीदवार मैदान में थे, मराठे, सिख, अंग्रेज़ और कुछ मुसलमान रईस। आप स्वयं न्यायपूर्वक जाति पक्षपात की ऐनक उतार कर उस युग का इतिहास और बाद के हालात को देखेंगे तो आप का दिल गवाही देगा कि दूसरे उम्मीदवारों में से किसी में भी बनाव की वह प्रवृत्तियां न थीं जो अंग्रेज़ों में थीं और जितना बिगाड़ अंग्रेज़ों में था उससे कहीं अधिक बिगाड़ मराठों, सिखों और मुसलमान उम्मीदवारों में था। जो कुछ अंग्रेज़ों ने बनाया वह इन में से कोई न बनाता और जो कुछ उन्होंने बिगाड़ा उससे कहीं अधिक ये उम्मीदवार बिगाड़ कर रख देते। अंग्रेज़ों को तन्हा देखिये तो अंगणित बुराइयां आप को मिलेंगी, किन्तु दूसरों से तुलना करके देखिये तो अपने समसामयिक

प्रतिद्वन्दियों से उनकी बुराइयां बहुत कम और उनकी अच्छाइयां बहुत अधिक निकलेंगी। यही कारण है कि ईश्वर के क़ानून ने फिर एक बार मनुष्यों के उस मनमाने सिद्धान्त को तोड़ दिया जो उन्होंने झूठ-मूठ गढ़ रखा है कि "प्रत्येक देश स्वयं देशवासियों के लिए है चाहे वह उसे बनायें या बिगाड़ें।" उसने इतिहास के अटल फ़ैसले से सिद्ध किया कि नहीं 'देश तो ईश्वर का है वही यह निर्णय करने का अधिकार रखता है कि इस का प्रबन्ध किसके हवाले करे और उसका निर्णय किसी जातीय, राष्ट्रीय अथवा पैतृक अधिकार पर नहीं होता अपितु इस आधार पर होता है कि सामूहिक हित कौन से प्रबन्ध में है।

"कहो कि हे ईश्वर, देश के स्वामी! तू जिसको चाहता है देश सौंप देता है और जिससे चाहता है छीन लेता है, जिसे चाहता है इज़्ज़त देता है, जिसे चाहता है ज़लील कर देता है। भलाई तेरे ही हाथ में है, तू प्रत्येक वस्तु पर सामर्थ्य रखता है।"(क़ुरआन ३ : २६)

इस प्रकार सर्वशक्तिमान सहस्रों मील की दूरी से एक ऐसी जाति को ले आया जो कभी यहां तीन चार लाख की संख्या से अधिक नहीं रही और उसने यहां के साधनों और यहीं के मनुष्यों से यहां की हिन्दू, मुस्लिम,सिख, सभी जातियों को दबा कर इस देश का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया।यहां की करोड़ों की जनसंख्या मुट्ठी भर अंग्रेज़ों के अधीन बनकर रही, एक-एक अंग्रेज़ ने अकेले एक-एक ज़िले पर शासन किया, जबकि उसका हाथ बटाने के लिये उसकी जाति का कोई अन्य व्यक्ति उसके पास मौजूद न होता। इस अवधि में भारतवासियों ने जो कुछ किया सेवकों की स्थिति में किया न कि कर्मचारियों की स्थिति में। हम सब को यह मानना पड़ेगा और न मानेंगे तो तथ्य को झुठलाएंगे कि इस सारी अवधि में जबकि अंग्रेज़ यहां रहे , बनाव का जो कुछ काम हुआ अंग्रज़ों के हाथों से और उनके प्रभाव से हुआ। जिस दशा में उन्होंने भारत को पाया था उस की अपेक्षा आज की हालत देखिये तो आप इस बात

से इन्कार न कर सकेंगे कि बिगाड़ के बावजूद बनाव का बहुत सा काम हुआ है जिसकी स्वयं देशवासियों के अपने हाथों होने की आशा कदापि नहीं की जा सकती थी। इस लिए ईश्वर का वह निर्णय ग़लत न था जो उसने अठारहवीं शताब्दी के मध्य में कर दिया था।

अब देखिए अंग्रेज़ जो कुछ बना सकते थे वह बना चुके हैं। उनके बनाव के हिसाब में अब कोई विशेष वृद्धि नहीं हो सकती। इस में जो वृद्धि वे कर सकते हैं वह दूसरों के हाथों से भी हो सकती है, किन्तु दूसरी ओर उनके बिगाड़ का अनुपात बढ़ चुका है और जितने दिन भी वे यहां रहेंगे बनाव की अपेक्षा बिगाड़ हीं का कार्य अधिक करेंगे। इनकी अभियोग सूची इतनी लम्बी है कि उसे एक संक्षिप्त लेख में बताना कठिन है और उसके वर्णन की कोई आवश्यक्ता भी नहीं है, क्योंकि वह सब के सामने है - अब ईश्वर का निर्णय यही है कि वह यहां के प्रबंध से बेदख़ल कर दिये जायें। उन्होंने बहुत बुद्धिमानी से काम लिया कि स्वयं सीधी तरह विदा होने को तैयार हो गये। सीधी तरह से न जाते तो टेढ़ी तरह निकाले जाते, क्योंकि ईश्वर के अटल नियम अब उनके हाथ में यहां का प्रबन्ध रखने के रवादार नहीं हैं।

यह अवसर जिसके सिरे पर आप खड़े हैं, इतिहास के उन महत्वपूर्ण अवसरों में से है जब विश्व का यथार्थ स्वामी किसी देश में एक शासन प्रबन्ध को समाप्त करता है और दूसरे प्रबन्ध का निर्णय करता है, देखने में जिस तरह यहां सत्ता हस्तांतरित करने का मामला तै होता दिखाई पड़ रहा है उससे यह धोखा न खाइये कि यह अटल निर्णय है जो देश का प्रबन्ध स्वयं देशवासियों के हवाले किये जाने के पक्ष में हो रहा है। आप शायद मामले की सादी-सी सूरत से ये समझते होंगे कि विदेशी जो बाहर से आकर शासन कर रहे थे वापस जा रहे हैं, इसलिए यह आप से आप होना ही चाहिए कि देश का प्रबन्ध स्वयं देशवासियों के हाथ आये। नहीं, ईश्वर के निर्णय इस प्रकार के नहीं होते। वह इन विदेशियों

को न पहले अकारण लाया था और न अब अकारण ले जा रहा है। न पहले अललटप उसने आप से प्रबन्ध छीना था और न अब अललटप वह इसे आप के हवाले कर देगा। सत्य तो यह है कि इस समय भारतवासी उम्मीदवार की हैसियत रखते हैं। हिन्दू, मुसलमान, सिख, सभी उम्मीदवार हैं। चूंकि यह पहले से यहां आबाद चले आ रहे हैं इसलिए पहला अवसर इन्हीं को दिया जा रहा है। किन्तु ये स्थायी नियुक्ति नहीं है, केवल परीक्षण काल है। यदि वास्तव में उन्होंने सिद्ध कर दिया कि उनमें बिगाड़ से बढ़कर बनाव की प्रवृत्तियां हैं तब तो उनकी नियुक्ति स्थायी हो जायेगी अन्यथा अपने बनाव से बढ़ कर अपना बिगाड़ पेश करके यह बहुत जल्दी देख लेंगे कि उन्हें फिर इस देश के प्रबन्ध से बेदख़ल कर दिया जायेगा और दूर या निकट की जातियों में से किसी एक को इस सेवा के लिए चुन लिया जायेगा, फिर इस निर्णय के विरुद्ध कोई फ़रियाद तक न कर सकेंगे। संसार भर के सामने अपनी योग्यता का खुला प्रमाण दे चुकने के बाद उनका मुंह क्या होगा कि कोई फरियाद करे और ढीठ बनकर फ़रियाद करेंगे भी तो उनकी सुनेगा कौन ?

अब आप निरीक्षण कर देखें कि भारत के लोग हिन्दू, मुसलमान, सिख इस परीक्षा के अवसर पर अपने ईश्वर के सामने अपनी क्या योग्यता या विशेषता पेश कर रहे हैं जिनके आधार पर वे आशा कर सकते हों कि ईश्वर अपने देश का प्रबन्ध फिर उनके हवाले करेगा। इस अवसर पर यदि मैं बेलाग तरीक़े से खुल्लमखुल्ला वह अभियोग सूची सुना दूं जो नैतिकता की अदालत में हिन्दुओं, मुसलमानों और सिखों सब पर लागू होती है तो में आशा करता हूं कि आप बुरा न मानेंगे। अपनी जाति और अपने देश के अवगुण बयान करके ख़ुशी तो मुझे भी नहीं होती, वास्तव में मेरा दिल रोता है, क्योंकि मैं तो मानो अपनी आंखों से उस कुपरिणाम को देख रहा हूं जो इन अवगुणों के कारण देखना ही नहीं भोगना भी पड़ेगा। मुझे आशंका है कि ये अवगुण उन्हें कहीं ले न डूबें। हम, आप कोई

भी इनके कुपरिणामों से न बचेंगे, इसलिए मैं उन्हें हार्दिक शोक के साथ बयान करता हूं, ताकि जिनके कान हों वह सुनें और सुधार के उपाय करें।

हमारे व्यक्तियों की साधारण नैतिक दशा जैसी कुछ है आप उसका अनुमान स्वयं अपने अनुभव तथा निरीक्षण के आधार पर कीजिये। हम में से कितने प्रतिशत आदमी ऐसे पाये जाते हैं जो किसी का हक़ मारने में, कोई अनुचित लाभ उठाने में, कोई "मुफ़ीद" झूठ बोलने और कोई "लाभप्रद" बेईमानी करने में केवल इस कारण संकोच करते हों कि ऐसा करना नैतिकता की दृष्टि से बुरा है ? जहां क़ानून पकड़ न करता हो, या जहां क़ानून की पकड़ से बच निकलने की कुछ भी आशा हो, वहां कितने प्रतिशत लोग केवल अपनी नैतिक अनुभूति के कारण कोई अपराध अथवा पाप करने से बाज़ रहते हैं ? जहां अपने किसी निजी लाभ की आशा न हो वहां कितने आदमी दूसरों के साथ भलाई, सहानुभूति, सद्व्यवहार, त्याग तथा सहयोग करते हैं। हमारे व्यापारियों में ऐसे कितने हैं जो धोखे, झूठ, छलकपट तथा अनुचित शोषण से बचते हैं ? हमारे कलाकारों में ऐसे लोगों का अनुपात क्या है जो अपने लाभ के साथ कुछ अपने ख़रीदारों के फ़ायदे और अपनी जाति अथवा राष्ट्र की भलाई का भी ख़्याल रखते हों ? हमारे ज़मींदारों में कितने हैं जो अपना ग़ल्ला रोकते हुए और बहुत बढ़े-चढ़े दामों पर बेचते हुए यह सोचते हों कि अपने इस शोषण से यह कितने लाख, बल्कि कितने करोड़ मनुष्यों को उपवास कराते हैं ? हमारे धनवानों में कितने हैं जिनकी धनसम्पत्ति में किसी अत्याचार, किसी बेईमानी, किसी बददियानती, किसी हक़तलफ़ी का दख़ल नहीं है ? हमारे श्रमिक वर्ग में कितने हैं जो कर्तव्य-परायणता के साथ अपने वेतन का हक़ अदा करते हैं ? हमारे सरकारी कर्मचारियों में कितने हैं जो घूस और ग़बन से अत्याचार और अन्याय से, कामचोरी और हरामख़ोरी से और अपने अधिकारों के अनुचित प्रयोग से बचे हुए हैं ? हमारे वकीलों में, हमारे डाक्टरों और हकीमों में, हमारे वैद्यों और

पत्रकारों में, हमारे संवाददाताओं तथा प्रकाशकों में और "राष्ट्रसेवकों तथा जातिभक्तों में कितने हैं जो अपने फ़ायदे के लिए नापाक से नापाक तरीक़े अपनाने और जन-साधारण को मानसिक, नैतिक, आर्थिक एवं शारीरिक क्षतियां पहुंचाने में कुछ भी लज्जा अनुभव करते हों ? शायद मेरा अनुमान ठीक ही हो यदि मैं यह कहूं कि हमारी जनसंख्या में से केवल ५ प्रतिशत इस नैतिक रोग से बचे हों, नहीं तो ९५ प्रतिशत को यह छूत बुरी तरह लग चुकी है। इस विषय में हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई और हरिजन के बीच कोई अन्तर नहीं। सबके सब रोगी हैं। सबकी नैतिक दशा अत्यन्त शोचनीय हद तक गिर चुकी है और किसी वर्ग का हाल दूसरे से अच्छा नहीं है।

नैतिक पतन की यह बात जब व्यक्तियों की एक बहुत बड़ी संख्या को अपनी लपेट में ले चुकी तो यह बात स्वाभाविक थी कि विस्तृत पैमाने पर सामूहिक रूप में इस का प्रदर्शन आरम्भ हो जाये। इस आने वाले तूफ़ान के प्रथम लक्षण हमें उस समय दिखाई पड़े, जब युद्ध के कारण रेलों में यात्रियों की भीड़ होने लगी। वहां एक ही जाति और एक ही देश के लोगों ने आपस में एक दूसरे के साथ जिस स्वार्थपरता, निर्दयता और कठोर हृदय का व्यवहार किया वह पता दे रहा था कि हमारी साधारण नैतिकता कितने वेग से गिर रही है। फिर आवश्यक सामग्री का अभाव और महंगाई के साथ संचय और चोरबाज़ारी बहुत बड़े पैमाने पर शुरू हुई। फिर बंगाल का कृत्रिम अकाल पड़ा जिसमें हमारे एक वर्ग ने अपने ही देश के लाखों मनुष्यों को अपने नफ़े के लिए भूख से तड़पा-तड़पा कर मार डाला। यह सब प्रारम्भिक लक्षण थे। इसके बाद दुराचार, नीचता, क्रूरता एवं निर्दयता का वह लावा यकायक फूट पड़ा जो हमारे अन्दर वर्षों से पक रहा था और अब वह साम्प्रदायिक दंगों के रूप में भारत को एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक भस्म कर रहा है। कलकत्ते के दंगे के बाद से हिन्दुओं, मुसलमानों और सिखों के जातीय संघर्ष का जो नया काण्ड शुरू हुआ है उसमें यह तीनों

जातियां अपने अत्यन्त घृणित अवगुणों का प्रदर्शन कर रही हैं। जिन कुकर्मों की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी कि कोई मनुष्य भी ऐसा कर सकता है, आज हमारी बस्तियों के रहने वाले खुल्लमखुल्ला उन्हें कर रहे हैं। बड़े-बड़े इलाक़ों की पूरी-पूरी जनसंख्या गुण्डा बन गई है और वह काम कर रही है जो किसी गुण्डे के स्वप्न में भी कभी न आये थे। दूध पीते बच्चों को माताओं के सीनों पर रखकर ज़िब्ह किया गया है, जीवित मनुष्यों को आग में भूना गया है, शिष्ट स्त्रियों को सबके सामने नंगा किया गया है और हज़ारों के जमघट में उनका सतीत्व लूटा गया है। बापों, भाइयों और पतियों के सामने उनकी बेटियों, बहनों और पत्नियों को बेइज़्ज़त किया गया है, धार्मिक पुस्तकों और पूजा-गृहों पर ग़ुस्सा उतारने के नापाक से नापाक प्रयत्न किये गये हैं। रोगियों, हताहतों और बूढ़ों को अत्यन्त क्रूरता से मारा गया है। यात्रियों को चलती ट्रेन से फेंका गया है, जीवित मनुष्यों के अंग काटे गये हैं, निहत्थे और बेबस मनुष्यों का पशुओं के समान शिकार किया गया है। पड़ोसियों ने पड़ोसियों को लूटा है, मित्रों ने मित्रों से छल किया है, शरण देने वालों ने स्वयं अपने दिये हुए शरण को तोड़ा है। शान्ति के ठेकेदारों (पुलिस, फ़ौज और मजिस्ट्रेटों) ने खुलकर दंगों में भाग लिया है, बल्कि ख़ुद फ़साद किये और सहायता देकर अपनी निगरानी में दंगे कराये हैं। सारांश यह है कि अन्याय, अत्याचार, क्रूरता, निर्दयता, नीचता और बदमाशी की कोई क़िस्म ऐसी नहीं रह गई है जिसको इन चन्द महीनों में हमारे देशवासियों ने सामूहिक रूप से न किया हो और अभी दिलों का मैल पूरी तरह निकला नहीं है। लक्षण बता रहे हैं कि जो कुछ घट चुका है वह सब कुछ इससे बहुत बड़े पैमाने पर और कहीं अधिक नि:कृष्टतम रूप में अभी घटने वाला है।

क्या आप समझते हैं कि यह सब कुछ आकस्मिक उत्तेजनाओं के अन्तर्गत था ? यदि आपका अनुमान यह है तो आप बड़े भ्रम में हैं। अभी मैं आपको बता चुका हूं कि इस देश की जनसंख्या के ९५ प्रतिशत व्यक्ति नैतिक दृष्टिकोण

से रोगी हो चुके हैं। जब आबादी की इतनी बड़ी संख्या दुराचारी हो जाये तो जातियों की सामुदायिक मनोवृत्ति आख़िर कैसे दुरुस्त रह सकती है। यही कारण है कि हिन्दू, मुसलमान, सिख तीनों जातियों में सच्चाई, न्याय-प्रेम और मानुषिकता का कोई महत्व नहीं रहा है। सत्यवादी, ईमानदार और सज्जन पुरुष उनके अन्दर नक्कू बन कर रह गये हैं। बुराई से रोकना और भलाई का उपदेश देना, उन के समाज में एक असह्य अपराध बन गया हैं। सत्य और न्याय की बात सुनने के लिए वे तैयार नहीं हैं। उनमें से प्रत्येक जाति को वही लोग भाते हैं जो उसकी हद से बढ़ी हुई अभिलाषाओं तथा स्वार्थपरताओं की वकालत करें। दूसरों के प्रति उसके पक्षपात को भड़कायें और उसके उचितानुचित प्रयोजनों के लिए लड़ने को तैयार हों। इस कारण इन जातियों ने छांट-छांट कर अपने भीतर से बदतरीन आदमियों को चुना और उन्हें अपना प्रतिनिधि बनाया। उन्होंने अपने बड़े से बड़े अपराधियों को ढूंढ-ढूंढकर निकाला और उन्हें अपना नेता बना लिया। इनकी सोसायटी में जो लोग सबसे अधिक पतित, दुराचारी और झूठे थे वे उनके पत्र सम्पादक बने और इस क्षेत्र में वही सबसे लोकप्रिय हुए। फिर यह लोग बिगाड़ की राह पर अपनी-अपनी बिगड़ी हुई जातियों को सरपट लेकर चले। उन्होंने विरोधी जातीय स्वार्थों को किसी न्याय-बिन्दु पर एकत्र करने के बजाय इतना बढ़ाया कि वह अन्ततः संघर्ष बिन्दु पर पहुंच गये। उन्होंने आर्थिक एवं राजनीतिक स्वार्थों के संघर्ष में क्रोध, द्वेष और घृणा का विष मिलाया और उसे नित्यप्रति बढ़ाते चले गये। उन्होंने वर्षों अपनी-अपनी आधीन जातियों को आवेगपूर्ण भाषणों तथा लेखों के इन्जेकशन दे देकर यहां तक भड़काया कि वह उद्विग्न होकर कुत्तों और भेड़ियों के समान लड़ने खड़ी हो गईं। उन्होंने जनसाधारण तथा प्रमुख व्यक्तियों के दिलों को नापाक उद्वेगों का सडास और अधबैर की भट्टी बनाकर रख दिया। अब जो तूफ़ान आपकी आंखों के सामने उठा है यह सामयिक अथवा आकस्मिक नहीं

है जो अचानक फूट पड़ा हो। यह तो स्वभाविक परिणाम है बिगाड़ के उन असंख्य कारणों का, जो मुद्दतों से हमारे अंदर कार्यशील थे और यह कुपरिणाम एक ही बार प्रगट होकर नहीं रह जायगा, बल्कि जब तक वे मूल कारण अपना काम किये जा रहे हैं वह प्रगति के साथ व्यक्त होता चला जायेगा। वह एक विषैली फ़स्ल है जो वर्षों के बीज डालने और सिंचाई करने के बाद अब तक पक कर तैयार हुई है और उसे आप को और आपकी सन्तान को पता नहीं कब तक काटना पड़ेगा।

आप ठंडे दिल से सोचें कि ठीक उस समय जबकि प्राकृतिक नियमानुसार इस देश का नया प्रबन्ध होने वाला है, हम जगदीश के सामने अपनी योग्यता का क्या प्रमाण दे रहे हैं ? अवसर तो यह था कि हम अपनी व्यवहार-नीति से यह सिद्ध करते कि यदि वह अपनी पृथ्वी का प्रबन्ध हमारे हवाले करेगा तो हम उसे ख़ूब बना संवार कर सुन्दर वाटिका बना देंगे, हम उसमें न्याय करेंगे, उसे सहानुभूति, सहयोग, दया एवं कृपा का स्वर्ग बना देंगे, उसके साधनों को अपने और मानवता के कल्याण में प्रयोग करेंगे, उसमें भलाइयों को परवान चढ़ायेंगे और बुराइयों को दबायेंगे। किन्तु हम उसे बता रहे हैं कि हम ऐसे विनाशकारी इतने अन्यायी और अत्याचारी हैं कि यदि तूने यह भू-भाग हमारे हवाले किया तो हम इसकी बस्तियों को उजाड़ेंगे, मुहल्ले और गांव के गांव फूक देंगे, मानव-प्राण को मक्खी और मच्छर से अधिक बेक़ीमत कर देंगे। औरतों को बेइज़्ज़त करेंगे, छोटे-छोटे बच्चों का शिकार करेंगे, बूढ़ों बीमारों और हताहतों पर भी दया न करेंगे, पूजागृहों और धार्मिक पुस्तकों तक को अपनी गंदगियों से लेस देंगे, और जिस भूतल को तूने मनुष्यों से आबाद किया है उसकी ''शोभा'' हम लाशों और जले हुए मकानों से बढ़ाएंगे। क्या वास्तव में आपकी अंतरात्मा यह गवाही देती है कि अपनी इन ''सेवाओं, इन विशेषताओं और इन महान् कार्यों को पेश करके आप ईश्वर की दृष्टि में उसके योग्यतम सेवक समझे

जायेंगे ? क्या यह करतूत देख कर वह आपसे कहेगा कि धन्य हो ! हे मेरे पुराने मालियों की सन्तान ! तुम्हीं सब से बढ़कर मेरी इस वाटिका की रखवाली के योग्य हो । इसी उखाड़- पछाड़, इसी उजाड़ और बिगाड़, इसी तबाही व बरबादी और गंदगी व ग़लाज़त के लिये तो मैंने यह बाग़ लगाया था, लो अब इसे अपने हाथों में लेकर ख़ूब ख़राब करो !''

मैं यह बातें आपसे इसलिए नहीं कर रहा हूं कि आप अपने आपसे और अपने भविष्य से निराश हो जायें । मैं न स्वयं निराश हूं और न किसी को निराश करना चाहता हूं । वास्तव में मेरा उद्देश्य आप को यह बताना है कि भारत के लोग अपनी मूर्खता और अज्ञान से इस सुनहरे मौक़े को खोने पर तुले हुए हैं जो किसी देश के भाग्य बदलते समय सदियों के बाद जगदीश्वर उसके निवासियों को दिया करता है। यह वक्त था कि वह दूसरे से बढ़-चढ़कर अपने उत्तम सद्गुणों और अपनी अच्छी प्रवृत्तियों का प्रमाण देते, ताकि ईश्वर की दृष्टि में जगत-प्रबन्ध के योग्य समझे जाते, किन्तु आज इनके बीच मुक़ाबला इस चीज़ में हो रहा है कि कौन अधिक विनाशकारी, अधिक अन्यायी और अधिक अत्याचारी है, ताकि सबसे बढ़कर ईश्वर के प्रकोप का वही पात्र ठहरे। यह लक्षण स्वतन्त्रता, उन्नति और समृद्धि के नहीं हैं। इनसे तो आशंका है कि कहीं फिर एक मुद्दत तक के लिये हमारे लिये ग़ुलामी और ज़िल्लत का फ़ैसला न लिख दिया जाये। अत: जो लोग बुद्धि रखते हैं उन्हें इन परिस्थितियों के सुधार की कुछ चिन्ता करनी चाहिए।

इस स्थान पर आपके दिल में यह प्रश्न स्वयं उत्पन्न होगा कि सुधार की सूरत क्या है ? मैं इसका उत्तर देने के लिए प्रस्तुत हूं।

इस अन्धकार में हमारे लिये आशा की केवल एक ही किरण है और वह यह है कि हमारी पूरी जनसंख्या बिगड़ कर नहीं रह गई है, बल्कि इसमें कम-से कम पांच प्रतिशत लोग ऐसे अवश्य मौजूद हैं जो इस सर्वव्यापक बिगाड़ से

सुरक्षित रह गये हैं। यही वह पूंजी है जिसको सुधार-आरम्भ के लिए प्रयोग किया जा सकता है। सुधार की राह में पहला क़दम यह है कि इस पवित्र अंश को छांटकर संगठित किया जाय। हमारे दुर्भाग्य का मूल कारण यही है कि हमारे यहां 'पाप' तो संगठित है और विधिपूर्वक अपना काम कर रहा है, किन्तु 'पुण्य' संगठित नहीं है। पुण्यात्मा तथा नेक लोग मौजूद अवश्य हैं, किन्तु अव्यवस्थित हैं। उनके बीच कोई सम्बन्ध अथवा उनमें कोई संगठन नहीं है, उनके पास न तो कोई कार्यक्रम है और न परस्पर सहयोग। इन्हीं सबके अभाव ने उनको बेअसर बना दिया है। कभी कोई ईशभक्त अपने वातावरण के दुराचारों को देखकर चीख़ उठता है, परन्तु जब किसी ओर से कोई आवाज़ उसके समर्थन में नहीं उठती तो निराश होकर बैठ जाता है। कभी कोई व्यक्ति सत्य एवं न्याय की बात साफ़-साफ़ कह बैठता है, किन्तु संगठित असत्य बलपूर्वक उसका मुंह बन्द कर देता है और सत्य-प्रेमी लोग बस अपनी जगह चुपके से उसकी प्रशंसा करके रह जाते हैं। कभी कोई आदमी मानवता का वध होते देखकर चुप नहीं रह सकता और उस पर चिल्ला उठता है किन्तु अत्याचारी वर्ग एकत्र होकर उसे दबा लेता है और उसका परिणाम देखकर बहुत से उन लोगों का साहस छूट जाता है जिनकी अन्तरात्मा में कुछ जान बाक़ी है। यह अवस्था अब समाप्त होनी चाहिए। यदि हम यह नहीं चाहते कि हमारा देश ईश्वर के प्रकोप में फंसे और इस प्रकोप में भले-बुरे सब फंस जाएं तो हमें प्रयत्न करना चाहिए कि हमारे भीतर जो पवित्र लोग इस नैतिक पतन से बचे रह गये हैं वह अब एकत्र और संगठित हों और सामूहिक शक्ति से इस बढ़ते हुए बिगाड़ का सामना करें जो शीघ्रता से हमें विनाश की ओर लिये जा रहा है।

आप इससे न घबरायें कि यह नेक लोग इस समय देखने में बहुत ही निराशकारी अल्प-संख्या में हैं। यह थोड़े से लोग यदि संगठित हो जायें, यदि इनका अपना वैयक्तिक अथवा सामूहिक जीवन सत्य, न्याय निष्ठा एवं निष्पक्षता

पर पूर्णरूपेण निर्धारित हो और यदि यह जीवन-समस्याओं का शुद्ध समाधान और दुनिया के मामलों को सुचारू रूप से चलाने के लिए एक अच्छा प्रोग्राम भी रखते हों तो विश्वास रखिये कि इस संगठित पुण्य के सामने संगठित पाप अपने पूरे लाव-लशकर के बाहुल्य और अपने अपवित्र हथियारों की तेज़ी के बावजूद परास्त होकर रहेगा। मानव प्रकृति पाप-प्रेमी नहीं है। उसे धोखा अवश्य दिया जा सकता है और एक बड़ी हद तक बिगाड़ा भी जा सकता है, किन्तु इसके भीतर सत्य — प्रेम का अंश जो विधाता ने रख दिया है उसे बिल्कुल नष्ट नहीं किया जा सकता। मानव-जाति में ऐसे लोग थोड़े ही होते हैं जो पाप ही से प्रेम रखते हों और उसी के फैलाने के लिए उठ खड़े हों और ऐसे लोग भी कम ही होते हैं जिन्हें पुण्य से प्रेम इस हद तक बढ़ गया हो कि उसे फैलाने के लिए तन,मन,धन की बाज़ी लगा दें। इन दोनों समूहों के बीच सर्वसाधारण मनुष्य नेकी और बदी की मिली-जुली प्रवृत्ति रखते हैं। वह न बदी पर मोहित होते हैं और न नेकी ही से उन्हें असाधारण लगाव होता है। उनका किसी ओर झुक जाना केवल इस पर निर्भर होता है कि पाप और पुण्य, सत्य, और असत्य, नेकी और बदी के प्रचारकों में कौन आगे बढ़कर उन्हें अपने रास्ते की ओर खींचता है। यदि पुण्य के प्रचारक सिरे से मैदान में आयें ही नहीं और उनकी ओर से जनसाधारण को भलाई की राह पर चलने का कोई प्रयत्न ही न हो तो नि:संदेह पाप के प्रचारक ही मैदान जीतेंगे और वह जनसाधारण को अपनी राह पर खींच ले जायेंगे। किन्तु यदि पुण्य के प्रचारक भी मैदान में मौजूद हों और वह सुधार का उचित प्रयत्न करें तो जनसाधारण पर पाप के प्रचारकों का प्रभाव अधिक समय तक स्थिर नहीं रह सकता, क्योंकि इन दोनों का मुक़ाबला अन्तत: नीति क्षेत्र में होगा, और इस क्षेत्र में नेक आदमियों को बुरे आदमी कभी परास्त नहीं कर सकते। सत्य के सामने झूठ, ईमानदारी के सामने बेईमानी और सदाचार के मुक़ाबले में दुराचार चाहे कितना ही ज़ोर लगाये अन्तिम विजय बहरहाल

सच्चाई, ईमानदारी तथा सदाचार की ही होगी। संसार इतना भोला नहीं है कि सुनीति की मिठास और कुनीति की कटुता को चख लेने के बाद अंत में उसका निर्णय यही हो कि मिठास से कटुता उत्तम है।

सुधार के लिए पुण्यात्माओं के संगठन के साथ-साथ दूसरी आवश्यक वस्तु यह है कि हमारे सामने बनाव बिगाड़ की एक स्पष्ट कल्पना मौजूद हो। हम भलीभांति यह समझ लें कि बिगाड़ क्या है, ताकि उसको दूर करने का प्रयत्न किया जाय और बनाव क्या है, ताकि उसे चरितार्थ करने पर सारी शक्ति लगा दी जाय। विवरण में जाने का इस समय अवकाश नहीं है मैं बहुत संक्षेप में आपके सामने इन दोनों चीज़ों की एक रूप-रेखा प्रस्तुत करूंगा।

मानव जीवन में बिगाड़ जिन चीज़ों से उत्पन्न होता है उनको हम चार बड़े-बड़े शीर्षकों के अन्तर्गत एकत्रित कर सकते हैं।

(१) ईश्वर से निभर्य होना जो संसार में अन्याय, क्रूरता, निर्दयता,न्याय-भंग और अन्य दुराचारों का मूल है।

(२) ईश-आदेश से विमुखता, जिसने मनुष्य के लिए किसी विषय में भी स्थायी नैतिक सिद्धान्त शेष नहीं रहने दिये जिनका पालन किया जाय। इसी के कारण व्यक्तियों और समूहों, वर्गों तथा राष्ट्रों का सारा कार्यक्रम स्वार्थान्धता, उपयोगितावाद, इन्द्रियलोलुपता तथा इच्छाओं की दासता पर निर्धारित हो गया है। इसी के फलस्वरूप न वह अपने उद्देश्यों में उचित अनुचित का अंतर करते हैं और न इनकी पूर्ति के किसी प्रकार के बुरे से बुरे साधन को अपनाने में उन्हें झिझक होती है।

(३)स्वार्थान्धता जो केवल व्यक्तियों ही को एक दूसरे का हक़ मारने पर नहीं उभारती, बल्कि बड़े पैमाने पर जातिभक्ति, राष्ट्रवाद तथा वर्गीय भेद भाव का रूप धारण कर लेती है और इस से बिगाड़ के असंख्य रूप जन्म लेते हैं।

(4) निष्क्रियता या पथभ्रष्टता, जिसके कारण मानव या तो ईश्वर की प्रदान की हुई शक्तियों और क्षमताओं का प्रयोग ही नहीं करता, या ग़लत प्रयोग करता है। या तो ईश-प्रदत्त साधनों से काम नहीं लेता या ग़लत काम लेता है। पहली स्थिति में ईश्वर का कानून यह है कि वह आलसी और निकम्मे लोगों को अधिक देर तक अपनी धरती पर क़ब्ज़ा जमाए रहने नहीं देता, बल्कि उनके स्थान पर ऐसे लोगों को ले आता है जो कुछ न कुछ निर्माण-कार्य करनेवाले हों। दूसरी स्थिति में जब ग़लत कामकरने वाले राष्ट्रों की विनाशकारिता उनकी निर्माण-क्रिया की अपेक्षा बढ़ जाती है तो वे हटाकर फेंक दिए जाते हैं और कभी-कभी स्वयं अपने ही विनाशकारी कामों का ग्रास बना दिए जाते हैं।

इसके मुक़ाबले में वे चीज़ें भी जिनके कारण मानव-जीवन बनता और सँवरता है, चार ही शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित होते हैं:

(1) ईश्वर का भय मनुष्य को बुराइयों से रोकने और सीधा चलाने के लिए एक ही विश्यवसनीय साधन है। सत्यवादिता, न्याय, विश्वसनीयता, कर्त्तव्य परायणता, आत्मसंयम और सभी अन्य उत्कृष्ट गुण जिन पर एक शांतिपूर्ण और विकासशील सभ्यता और संस्कृति का जन्म लेना निर्भर है, इसी एक बीज से उत्पन्न होती हैं। यद्यपि कुछ दूसरी धारणाओं के कारण भी किसी न किसी सीमा तक उन्हें पैदा किया

जा सकता है जिस प्रकार पाश्चात्य राष्ट्रों ने कुछ न कुछ अपने अन्दर पैदा किया है, लेकिन इन साधनों से पैदा किए हुए गुणों का विकास एक सीमा ही तक जाकर रुक जाता है और इस सीमा के अन्दर भी उनका आधार डाँवाडोल रहता है। मात्र ईश-भय और ईश-प्रेम ही वह सुदृढ़ आधार है जिसपर मनुष्य के अन्दर बुराई से रुकने और भलाई पर चलने का गुण सुदृढ़ता के साथ स्थित होता है और सीमित स्तर पर नहीं बल्कि अत्यन्त विस्तृत पैमाने पर सभी मानवीय सम्बन्धों में अपना प्रभाव दर्शाता है।

(2) ईश्वर के मार्गदर्शन का अनुसरण जो मनुष्य के व्यक्तिगत, सामूहिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय आचार-व्यवहार को नैतिकता के स्थायी सिद्धान्तों का पाबन्द करने का एक मात्र उपाय है जब तक मनुष्य अपने नैतिक सिद्धान्तों का स्वयं निर्माता और विधायक रहता है, उसके पास बातें बनाने के लिए कुछ और सिद्धान्त होते हैं और व्यवहार में लाने के लिए कुछ और। पुस्तकों में स्वर्णाक्षरों से वह एक प्रकार के सिद्धान्त लिखता है और व्यवहार में अपने मतलब के मुताबिक बिलकुल दूसरे ही प्रकार के सिद्धांत पर चलता है। दूसरों से अपेक्षा करते समय उसके सिद्धांत कुछ और होते हैं और स्वयं व्यवहार करते समय कुछ और। अवसर और हित तथा इच्छा और आवश्यकता के दबाव से उसके सिद्धांत हर पल बदलते हैं। वह नैतिकता का मूल केन्द्र सत्य को नहीं बल्कि अपने हित को बनाता है। वह इस बात को मानता ही नहीं कि उसके व्यवहार को सत्य के अनुसार

ढलना चाहिए, इसके बदले वह चाहता है कि सत्य उसके हित के अनुकूल ढले। यही वह चीज़ है जिसके कारण व्यक्तियों से लेकर राष्ट्रों तक सबका आचार-व्यवहार ग़लत हो जाता हैं और इसी से संसार में उपद्रव फैलता है। इसके विपरीत जो चीज़ मनुष्य को शांति, खुशहाली और कल्याण तथा सौभाग्य प्रदान कर सकती है वह यह है कि नैतिकता के कुछ ऐसे सिद्धांत हों जो किसी हित के अनुसार नहीं बल्कि सत्य के अनुकूल बने हुए हों और उन्हें अटल मानकर सभी मामलों में उनकी पाबन्दी की जाए चाहे वे मामले व्यक्तिगत हों या राष्ट्रीय, चाहे वे व्यापार से सम्बन्ध रखते हों या राजनीति और युद्ध तथा शान्ति-समझौतों से। स्पष्ट है कि ऐसे सिद्धांत मात्र ईश्वरीय मार्गदर्शन ही में हमें मिल सकते हैं और उनके व्यावहारिक रूप से लागू होने का मात्र यही एक उपाय है कि मनुष्य उनके अन्दर फेर-बदल करने के अधिकार से अलग होकर उन्हें अंतिम रूप से अनिवार्य अनुकरणीय स्वीकार कर ले।

(3) मानव-व्यवस्था जो व्यक्तिगत, राष्ट्रीय, वंशगत और वर्गीय स्वार्थों के स्थान पर सारे मनुष्यों के समान पद (प्रतिष्ठा) और समान अधिकार पर आधारित हो; जिसमें अनुचित भेदभाव न हों; जिसमें ऊँच-नीच, छूत-छात और कृतिम तथा बनावटी पक्षपात न हों; जिसमें कुछ लोगों के लिए आरक्षित अधिकार और कुछ अन्य लोगों के लिए बनावटी पाबंदियाँ और रुकावटें न हों; जिसमें सबको समान रूप से फलने-फूलने का अवसर मिले; जिसमें मानव की नीचता और श्रेष्ठता मात्र उसकी

विशेषताओं और गुणों के आधार पर हो और जिसमें इतनी व्यापकता हो कि धरती के सारे मनुष्य उसमें समानता के साथ भागीदार हो सकते हों।

(4) शिष्ट व्यवहार, अर्थात ईश्वर द्वारा प्रदत्त शक्तियों और उसके प्रदान किए हुए साधनों को पूर्ण रूप से व्यवहार में लाना और सही व्यवहार में लाना।

भाइयो ! ये चार चीज़ें हैं जिनके संकलन का नाम "बनाव और सुधार" है और हम सबका भला इसमें है कि हमारे बीच भले लोगों की एक ऐसी संस्था और संगठन मौजूद हो जो बिगाड़ के कारणों को रोकने और बनाव के उन उपायों को व्यवहार में लाने के लिए अनवरत संघर्ष करे। यह संघर्ष यदि इस देश के वासियों को सीधे मार्ग पर लाने में सफल हो गया तो ईश्वर ऐसा अन्यायी नहीं है कि वह बिना किसी कारण के अपनी धरती की व्यवस्था उसके मूलवासियों से छीनकर किसी और को दे दे, लेकिन यदि यह संगठन असफल हुआ तो हम नहीं कह सकते कि हमारा, आपका और इस भारत-भूमि के अन्य निवासियों का क्या परिणाम होगा।